शोध पत्र-हिन्दी

Feb, 2010

गद्यकार महादेवी वर्मा और नारी समस्याएँ

* डॉ बालाजी श्रीपती भुरे

*शिवजागृती वरिष्ठ महाविद्यालय, नळेगाव, लातुर

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावादी काव्यधारा के प्रमुख चार आधारस्तंभों में से (प्रसाद, पंत, निराला और वर्मा) महादेवी वर्मा एक प्रमुख कवयित्री हैं। उन्होंने अपने नाम को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सफल और सार्थक बना दिया है। महादेवी वर्मा सर्वप्रथम एक श्रेष्ठ कवयित्री के रूप में और तद्नंतर गद्यकार के रूप में हमारे सामने आती हैं। इसीलिए उनके काव्य के आलोक में ही गद्य को समझा जा सकता है। उनके कवि और गद्यकार दो रूपों को लेकर राष्ट्रीय कवि मैथिलिशरण गुप्त ने लिखा है -

"सहज भिन्न दो महादेवियां एक रूप में मिली मुझे,
बता बहन साहित्य शारदा या कवयित्री कहूं तुझे।"[1]

महादेवी के साहित्य का अध्ययन करने पर हमें वह काव्य और गद्य में अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। काव्य में वह विरहिनी है तो गद्य में विद्रोहिणी। काव्य में वैयक्तिकता, आध्यात्मिकता, कल्पनाशीलता दिखाई देती है तो गद्य में यथार्थवादी दृष्टि, समाजाभिमुखता, शोषण तथा अन्याय के प्रति विद्रोह का रूप दिखाई देता है। काव्य की उनकी वैयक्तिक वेदना गद्य में आकर सामाजिक वेदना का रूप धारण करती है। हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि छायावादी काव्य में विरह वेदना की गायिका तथा आधुनिक मीराँ कही जानेवाली महादेवी वर्मा गद्य की ओर कैसे उन्मुख हुई। इस बात को लेकर उन्होंने स्वयं कहा है - "विचारों के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।"[2] इसी विचार से अनुप्रणित होकर उनके द्वारा लिखा साहित्य हिन्दी की एक सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि बन गया है। जैसे - 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'पथ के साथी', 'क्षणदा' आदि संस्मरण और रेखाचित्र हैं तो साहित्यकार और आस्था तथा अन्य निबंध, संभाषण आदि आलोचनाएँ हैं। इन गद्य रचनाओं में उनकी दृष्टि समष्टि पर केंद्रित हुई दिखाई देती है। उन्होंने अपनी गद्य रचनाओं में जनता के पीड़ित जीवन को यथार्थ की वाणी प्रदान कर समाज के दु:ख, दैन्य, स्वार्थ आदि का प्रतिकार किया है। लगता है उनके साहित्य में एक विद्रोही आत्मा रो उठी है। उनका यह साहित्य उनके जीवन का यथार्थ है, जहाँ उन्होंने अनेक प्रसंगों को देखा, भोगा, जिया और संघर्ष किया है।

अपनी नौ साल की आयु में जब उसे ब्याहकर ससुराल भेजा गया तब वहाँ उसने न कुछ खाया, न पीया, सिर्फ रोती रही। सारे घर में मातम सा छा गया। तेज बुखार के कारण जब उसे मायके छोड़ा गया तब ससुराल में रूकी शिक्षा पुन: प्रारंभ हुई। यहाँ तक कि बी. ए. के बाद जब गौने का प्रश्न आया तो भी उन्होंने अपनी शिक्षा को रूकने नहीं दिया। बल्कि पूरी दृढ़ता के साथ अपनी जिज्जी से कहा कि, "मैं विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। तब आपकी गौने की चर्चा ही व्यर्थ है।"[3] पिता के द्वारा दूसरे विवाह की बात करने पर भी उन्होंने स्पष्ट नकार देकर अपनी विवाह- संबंधी बातों को हमेशा के लिए विराम दिया। अपने वैवाहिक जीवन को अस्वीकार करके भी उन्होंने अपना जीवन और परिवार सीमित नहीं किया अपितु अधिक विस्तृत ही कर दिया। गाय, हिरण, बिल्लियाँ, गिलहरी, कुत्ते, मोर, कबूतर, खरगोश आदि इनके चिरसंगी बन गये तथा पुष्पलता आदि पारिवारिक ममता के समान अधिक आत्मीय बन गये। इन सबका तथा नारी की विविध सामाजिक समस्याओं का चित्रण उन्होंने अपने गद्य साहित्य में किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में समाज, कूल तथा परिवार में नारी का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। उसकी महत्ता को लेकर कहा भी गया है कि -**"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।/ यत्रैस्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फल: क्रिया।"**[4]

लेकिन पुरूषप्रधान समाज ने नारी की ओर कभी मानवतावादी दृष्टि से नहीं देखा। अपितु उसके प्रति अनेक दूषित मान्यताएँ स्थापित कर उसे भोग्य की वस्तु मात्र बना दिया। आधुनिक युग में

नारी की स्थिति में परिवर्तन तो आया लेकिन "पुरानी दूषित समाज व्यवस्था के नियम अब भी प्रचलित हैं और समाज में आज भी नारी को पुरूष मनोरंजन की वस्तु मानकर चलता है।"[५] इससे क्या परिवार का, समाज का कल्याण होगा? नहीं, इसके लिए दोनों को एक दूसरों को समझकर चलना आवश्यक हैं क्योंकि "जिस कुल में नारी से पुरूष एवं पुरूष से नारी संन्तुष्ट रहती है, उस कुल में निश्चिय ही सदैव कल्याण होता है।"[६] इसी विचारधारा को स्थापित करने हेतु महादेवीजी ने जो कुछ प्रत्यक्ष सुना, देखा और भोगा उसी को एक नारी होने के नाते अपने गद्य साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखा।

'श्रृखंला की कड़ियाँ' में भारतीय **नारी का उपेक्षिता रूप** है। व्यक्तित्वहीन, अधिकारहीन, जहाँ भी देखो उनका अपमान ही अपमान, न उसे पुत्री के रूप में कोई अधिकार है, न माता के रूप में, पत्नी के रूप में न विधवा के रूप में। यहाँ तक कि, "समाज ने स्त्री सम्बंध में अर्थ का ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नहीं है, वरन् अर्थ के संबंध में भी सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बन्धन में बँधी हुई है। कहीं पुरूष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ उठाकर उसे इतना अधिक परावलंबी बना दिया है कि वह उसकी सहायता के बिना संसार पथ में एक पग भी आगे नहीं बढ़ा सकती।"[७] इतनाही नहीं उसका हसना, रोना सब पति पर निर्भर रहता है। वह पुरूष के भोग का साधन मात्र बनकर रह गयी है।

भारतीय समाज में **विवाहोपरान्त नारी की दशा** और भी दयनीय हो जाती है। वह एक **बंधिनी** मात्र बनकर रह जाती है। उसकी करूणा जनक दशा का वर्णन करते हुए महादेवीजी ने कहा है कि, "इस समय तो भारतीय पुरूष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपभोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह स्त्री को भी पाल लेता है। अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरूष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय असमय प्रौढ़ हुई, दुर्बल संतानों की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विविधता, कौन-सी रूला देने वाली करूणा न मिलेगी !"[८] वह मात्र निर्जिव पत्थर सी बनकर रह जाती है। **विवाह पूर्व संतान की प्राप्ति** तो नारी के लिए भयावह पीड़ा देनेवाली है। इससे उसका जीवन नरकीय वेदना से भर जाता है। समाज उसे जीने नहीं देता। उसका विरोध करती हुई लेखिका 'अतीत के चलचित्र' में कहती है "यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरों, तुमने हमारा नारीत्व-पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी तो इनकी समस्यायें तुरन्त सुलझ जावे। जो समाज इन्हें वीरता, साहस और त्याग भरे मातृत्व के साथ नहीं स्वीकार कर सकता, क्या वह इनकी कायरता और दैन्य भरी मूर्ति को उँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगों से पुरूष स्त्री को अपनी शक्ति के लिए नहीं - सहन शक्ति के लिए दण्ड देता आ रहा है।"[९] लेकिन नारी ने इसका कभी विरोध नहीं किया। इससे वह समस्याओं के दल-दल में और भी फसती गयी और पुरूष अपने स्वार्थपूर्ति के लिए उसे फसाता गया।

समाज में **वेश्या का रूप** तो नारी के लिए सर्वदा तिरस्कृत और कलंकित माना जाता है। वेश्या जीवन और उसकी पीड़ा को लेकर महादेवीजी कहती है, "यदि स्त्री की ओर से देखा जाये तो निश्चय ही देखनेवाला काँप उठेगा। उसके ह्रदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृणमरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन भर आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने ह्रदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचलकर आत्मसमर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा - और परिणाम में उसके हाथ आया निराश - हताश एकाकी अन्त।... जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटूकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत करता रहता है, उसके सौन्दर्य - दीप पर शलभ - सा मण्डराता रहता है, परन्तु उस मादकता के अन्त में, उस हाट के उतर जाने पर उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र भी नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूपवैभव का भग्नावशेष, क्या उसके ह्रदय को किसी प्रकार की सांत्वना भी दे सकता है? जिन परिस्थितियों ने गृह - जीवन से उसका बहिष्कार किया, जिन व्यक्तियों ने उसके काले भविष्य को सुनहले स्वप्नों से ढाँका, जिन पुरूषों ने उसके नूपुरों की रून-झुन के साथ अपने ह्रदय के स्वर मिलाये और जिस समाज ने उसे इस प्रकार हाट लगाने के लिए विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अन्त का भार कम करने लौट सके?"[१०] यह सवाल नारी की दर्दनाक पीड़ा को व्यक्त करता है। वेश्या - जीवन के समस्त दोषों का जिम्मेदार पुरूष मात्र है क्योंकि उसकी उद्दाम वासना ने ही इस समस्या को जन्म दिया है। इसके लिए नारी की व्यक्तिगत दुर्बलता कारणीभूत न होकर उसकी आर्थिक पराधीनता ही इस वृत्ति को प्रोत्साहीत करती है।

समाज में **प्रसुता विधवा नारी** के सामने भी कम समस्याएँ नहीं है, चाहे वह बालविधवा हो या सामान्य विधवा। महादेवीजी ने इनकी समस्याओंपर भी विचार किया है, जो छोटी सी भूल के कारण गर्भवती बन जाती है और सभी प्रकार की लांछनाओं का

लक्ष्य बन जाती है। विधवा का जीवन भयावह होता है। उसकी ओर समाज वासना भरी दृष्टि से देखने लगता है। पुरूष विधवा नारी के मन में पत्नी बनाने की आशा जगाकर उसे अपनी वासना का शिकार तो बनाता है, लेकिन उसे गर्भवती पाकर अपनी प्रतिज्ञा भूल जाता है। ऐसी संकट की बेला में विधवा को या तो भ्रूण-हत्या के पाप-कृत्य का सहारा लेना पड़ता है या संतान को किसी अनाथालय की चौखट पर छोड़कर भागना पड़ता है। जब महादेवीजी एक ऐसी ही प्रसूता विधवा की सहायता करने जाती है तब उसे देखकर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए लिखती है, "अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती; उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उसपर नहीं रखा जा सकता; पर उसकी आत्मा का जो अंश, ह्रदय का जो खण्ड उसके समान है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरूष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल इस मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी? संसार में चाहे उसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी? इसी कर्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है। किसलिए? केवल इसलिए कि या तो उस वंचक समाज में फिर लौट कर गंगा - स्नान कर, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के द्वारा सती विधवा स्वाँग भरती हुई भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा - आश्रम में पशु के समान नीलाम पर चढ़कर कभी नीची, कभी उँची बोली पर बिके। अन्यथा एक-एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।"[११] यही उसके जीवन का कटु सत्य है। **पुत्री के प्रति अनास्था** भारतीय समाज की खास करके हिंदू समाज की बहुत बड़ी समस्या है। हिंदू समाज में पुत्र को कुलदीपक माना जाता है तो पुत्री के जन्म को भी अशुभ माना जाता है। यह पुरूष और नारी में विषमता उत्पन्न कर देनेवाली जड़ तो है। इस सामाजिक प्रवृत्ति के बारे में लेखिका लिखती है कि"आँगन में गानेवालियाँ द्वार पर नौबतवालों और परिवार के बूढ़े से लेकर बालक तक सब पुत्र की प्रतीक्षा में बैठे रहते थें, जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया, वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे तक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गई, बड़ी बुढ़िया संकेत से मूक गानेवालियों को जाने के लिए कह देती और बड़े बूढ़े इशारे से नीरव बाजेवालों को बिदा देते... "[१२] यह पुत्री के प्रति अनास्थावादी मानसिकता आज भी समाज में दिखाई देती है। यह प्रवृत्ति पुरूष के साथ नारी में भी पायी जाती है।

बालविवाह का मूल कारण पुरूष की पुत्री के प्रति अनास्था को ही माना जा सकता है। पुत्री को परायी समझ कर पुरूष अपनी जिम्मेदारी से अलग होना चाहता है। भक्तिन के चित्रण के माध्यम से इस बालविवाह की कुरीतियों के बारे में लेखिका मार्मिक शब्दों में कहती है कि "पांच वर्ष की वय में उसे हंडिया ग्राम के एक सम्पन्न गोपालक की सबसे छोटी पुत्र-वधू बनाकर पिता ने शास्त्र से दो पग आगे रहने की ख्याति कमाई और नौ वर्षीया युवती का गौना देकर विमाता ने बिना मांगे पराया धन लोटनेवाले महाजन का पुण्य लूटा।"[१३] यह नारी के प्रति कैसी विडंबना है।

दहेजप्रथा तो हमारे समाज को लगी भयानक बीमारी है। इस बीमारी की चपेट में नारी मात्र आती है। यह शरीर की ऐसी सौदेबाजी है, जिससे कई बार आपसी रिश्ते भी टूट जाते हैं, तो कभी - कभी नारी का जीवन ही समाप्त होता है। इसी जानलेवा प्रथा पर महादेवीजी व्यंगात्मक टिप्पणी करते हुए कहती है कि इस दहेज प्रथा से "प्रश्न उठता है कि क्या यह क्रय - विक्रय, यह व्यवसाय स्त्री के जीवन का पवित्रतम बंधन कहा जा सकेगा? क्या इन्हीं पुरुषार्थ और पराक्रमहीन परावलंबी पतियों से वह सौभाग्यवती बन सकेगी?"[१४] इसका उत्तर होगा नहीं। पारंपारिक विचारों को लेकर चलनेवाली नारी ने भी इसका कभी विरोध नहीं किया। लेकिन आज आधुनिकता ने नारी के पारंपारिक विचारों में कुछ मात्रा में ही क्यों न हो परिवर्तन ला दिया है। वह अपने अन्याय का अब विरोध करने लगी है। "अब उसे नारी का पुराना सब कुछ सहने फिर भी मौन रहनेवाला रूप पसंद नहीं आता। वह उन्नति चाहती है, परिवर्तन की आकांक्षी है।"[१५] और उसे रहना भी चाहिए। महादेवीजी ने ऐसी नारियों का भी चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। 'स्मृति की रेखाएँ' की नारी पात्र भक्तिन के पति की जब मृत्यु हो जाती है और उसके जेठ उसकी संपत्ति हड़प करने के लिए उसकी दूसरी शादी करना चाहते हैं तब भक्तिन उसका विरोध करते हुए कहती है कि, "हम कुकुरी बिलारी न होयँ, हमारा मन पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब और राज करब, समुझे रहौ।[१६] यह नारी के परिवर्तनशील मानसिकता का ही एक रूप है।

महादेवी वर्मा ने अपनी रचनाओं में नारी की आर्थिक विषमता, विधवा समस्या, दहेजप्रथा, अस्मिता की रक्षा, यौन अतृप्ति की समस्या, मानसिक स्वतंत्रता जैसे कई प्रश्नों पर विचार किया है और यह स्पष्ट किया है कि इन सभी प्रश्नों की एक मात्र खुराक है अपनत्व की और सौहार्दता की भावना। यही एक भावना है जो पुरूष और नारी के बीच की दरार को नष्ट कर सकती है।

मनों की निकटता का अभाव इस वैज्ञानिक युग में अनेक समस्याओं का मूल कारण बन गया है। इस संबंध में लेखिका का विचार है कि, "आज के युग में मनुष्य पास है परंतु मनुष्य का शंकाकुल मन पास आनेवालों से दूर होता जा रहा है। स्वस्थ आदान के लिए मनों की निकटता पहली आवश्यकता है।"[१७] और

इसी के अभाव के कारण आज परिवार टूटते जा रहे हैं और समाज का ढाँचा चरमराने लगा है। इसलिए समाज के साथ-साथ "घरेलू कामकाज के बारे में पति-पत्नी के बीच एक संयुक्त जिम्मेदारी की भावना, और इन कार्यों को दोनों के लिए गरिमायुक्त और सम्मानीय समझने की भावना घर में शुरू से ही केवल उपदेश के रूप में नहीं बल्कि व्यवहार रूप में विकसित की जानी चाहिए।"[१८] तब जाके नारी को सही न्याय मिल सकता है।

महादेवी वर्मा अपनी रचनाओं में केवल समस्याओं का निरूपन नहीं अपितु उसका समाधान और निधान भी करना आवश्यक समझती है। बुराई को बुराई कहने मात्र से बुराई नष्ट नहीं होती। उनके मतानुसार कीचड़ को कीचड़ से धो सकना संभव नहीं, उसे धोने के लिए तो निर्मल जल की आवश्यकता होती है। अपने गद्य में उनकी यह दूरदर्शिता इस कथन से और भी स्पष्ट होती है कि "उनकी दृष्टि सामाजिकता के धुंधले वातावरण तक ही सीमित नही है अपितु वह आगे और पीछे के दृष्यों को भी देख पाने की क्षमता से युक्त है। इसीलिए उन्होंने आधुनिक समाज, धर्म, अर्थ, राजनीति, शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्ध विभिन्न स्थितियों एवं परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए युगीन विषमताओं एवं समस्याओं का निदान एवं समाधान पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत किया है।"[१९] महादेवीजी के विविध समस्याओं से पीड़ित नारी के हृदयस्पर्शी चित्रण को लेकर डॉ. वीरेंद्रकुमार बडसूवाला ने कहा है कि, "परिचयात्मक शैली से महादेवी ने यहाँ उपेक्षित दीन-हीन समाज का विशेषतः युग-युग से प्रताड़ित भारतीय नारी के अंतर्बाह्य का रेखांकन किया, व्यंग्यात्मक शैली से पुरूषद्वारा ऊसपर चिरकाल से किए जा रहे विविध अत्याचारों का एवं उसपर थोपी गयी हीन एवं दयनीय आर्थिक विवशता का ज्वलंत प्रसंग उजागर किया है। अर्थात नारी होने के कारण नारी के प्रति सहानुभूति उनमें स्वाभाविक है। परंतु यह कार्य उन्होंने पूरी तटस्थता के साथ किया है।"[२०] इसमें अपने संतुलन को कहीं भी खोने नहीं दिया।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि महादेवीजी ने अपने गद्य साहित्य में भारतीय नारी की वेदना को, उसके दुःखभरे जीवन को रेखांकित किया है। वह नारी की विविध बंधनों से मुक्ति चाहती है। इसीलिए उनके गद्य साहित्य में नारी समस्याओं के प्रति विद्रोही रूप प्रकट हुआ है। उनकी रचना 'श्रंखला की कड़ियाँ' तो नारी संबंधी प्रगतिशील विचारों की सशक्त कड़ी है। 'स्मृति की रेखाएँ' यथार्थ की नींव पर खड़ी है और 'अतीत के चलचित्र' के माध्यम से महादेवीजी अपने आपको सामान्य जन से जोडकर अपना मानवतावादी तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण अभिव्यक्त करती है। उनके समग्र गद्य में उनकी अभिव्यक्ति का उच्चतम विकास देखने को मिलता है। समाज में पुरूष ने एक तरफ धर्म का आधार देकर नारी की महिमा का वर्णन तो किया लेकिन दूसरी तरफ उसके सभी अधिकारों को छीन लिया। आज भी उसकी यह सोच है कि नारी दिखे आधुनिक और रहे परंपरावादी। नारी का संबंध पुरूष ने उस पत्थर के साथ जोड़ दिया है, जिससे ठोकर खाकर उसकाही सर टूटे और बचता रहे वह बेदाग पाप करने के बावजूद भी। ऐसी पुरूषप्रधान संस्कृति में पल रही दहेज प्रथा, विधवा, वेश्या, पुरूष की उपभोगवृत्ति, पति-पत्नी में अनबन और पारिवारीक सडांध आदि कई समस्याओं का चित्रण महादेवीजी ने अपनी गद्य रचनाओं में कर उसपर निदान भी बताया है। आज नारी ने कुछ मात्रा में शिक्षा के कारण अपने पारंपारिक दायरों को तोड़ तो दिया है लेकिन साथ ही साथ पाश्चात्य भौतिकवादी जीवनशैली का वह शिकार भी बनती जा रही है। इससे उनकी पारंपारिक समस्यायें तो कम हो रही हैं लेकिन नई समस्याओं को भी वह जन्म दे रही है। ऐसे समय उसे पुराने और नये में समन्वय करना आवश्यक है। पुरुष और नारी दोनों के समुचित समन्वय से ही परिवार का, समाज का विकास हो सकता है। महादेवी वर्मा ने इसी विचार को अपने गद्य साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखा है और उसमें से भारतीय नारी को यह संदेश भी दिया है कि वह अपने कर्तव्य की गरिमा को प्राप्त करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. प्रा. हरजीभाई वाघेला - 'छायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ एवं महादेवी वर्मा' - पृ. ४३. २. डॉ. गोवर्धनसिंह - 'महादेवी का गद्य साहित्य : विश्लेषण और स्वरूप' - पृ. १७. ३. प्रा. हरजीभाई वाघेला - 'छायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ एवं महादेवी वर्मा' - पृ. ४४. ४. सं. डॉ. चमनलाल गौतम - 'मनुस्मृति' - पृ. ८२. ५. डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' - 'आधुनिक कवियों का जीवन दर्शन' - पृ. १३१. ६. डॉ. अच्युतानन्द धिल्डियाल - 'प्राचीन भारतीय स्मृतिकार और नारी' - पृ. १३४. ७. महादेवी वर्मा - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. १०८, १०९. ८. महादेवी वर्मा - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. ८३, ८४. ९. महादेवी वर्मा - 'अतीत के चलचित्र' - पृ. ५९. १०. महादेवी वर्मा - 'श्रृंखला की कड़ियाँ'- पृ. ८९, ९०. ११. महादेवी वर्मा - 'अतीत के चलचित्र' - पृ. ५८. १२. महादेवी वर्मा - 'अतीत के चलचित्र' - पृ. १८, १९. १३. डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम - 'महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार' - पृ. १२२, १२३. १४. महादेवी वर्मा - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. ७८. १५. डॉ. शशि जेकब - 'महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता' - पृ. ४२. १६. महादेवी वर्मा - 'स्मृति की रेखाएँ' - पृ. ७. १७. सं. निर्मला जैन - 'महादेवी साहित्य समग्र (भाग - ३)' - पृ. २६४. १८. डॉ. प्रमिला कपूर - 'कामकाजी भारतीय नारी (बदलने जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति)', पृ. १२६. १९. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त - 'महादेवी : नया मूल्यांकन' - पृ. १०३. २०. डॉ. वीरेंद्रकुमार बडसूवाला - 'गद्यकार महादेवी वर्मा' - पृ. १०३.